क्या हर किसी को समर्थ गुरु की आवश्यकता होती है?

क्या हर किसी को समर्थ गुरु की आवश्यकता होती है ?

लगभग तीन दशक पूर्व अखंड ज्योति जुलाई 1996 अंक में प्रकाशित आर्टिकल में परम पूज्य गुरुदेव बता रहे हैं कि वे बहुत सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें समर्थ गुरु का संरक्षण एवं मार्गदर्शन प्राप्त है। सचमुच जिन्हें ऐसे समर्थ गुरु का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिल गया समझना चाहिए कि जीवन लक्ष्य प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना की आधी मंजिल पूरी हो गयी ।

बीज में वृक्ष बनने की पूरी-पूरी सम्भावना विद्यमान रहती है, पर कुशल माली अथवा किसान का सहयोग न मिले तो उसके अंकुरित होने तथा विकसित होकर फल-फूल देने योग्य बन चलने का सुअवसर नहीं मिल पाता। किसी प्रकार अपने पुरुषार्थ से, हवा आदि के झोंके के सहारे वह कहीं भूम में पड़ भी जाय तो भी उसका वह समग्र विकास नहीं हो पाता, जो माली के सहयोग से हो सकता था। जो गरिमा, उपयोगिता एवं प्रयोजनीयता सजे-सँवरे उद्यान में

विकसित हुए पौधों एवं खेतों में लहलहाते पौधों की होती है, वह झाड़-झंखाड़ों में किसी तरह प्रकृति के सहयोग से उग आये पुष्प एवं खाद्यान्न उत्पादन करने वाले पौधों की नहीं होती। विकसित होने की सभी विशेषताएँ अपने भीतर सन्निहित किये होने के बावजूद भी बीज को अभीष्ट सहयोग की इच्छा होती है, आशा होती है। वह सहयोग मिलते ही बीज की सभी सम्भावनाएँ साकार होने लगती और पौधे के रूप में बदलते देरी नहीं लगती।

मनुष्य कितना भी समर्थ क्यों न हो, वह अकेले कुछ भी नहीं कर सकता। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे प्रत्यक्ष अथवा indirect सहयोग किसी न किसी रूप में मिलता ही रहता है। जन्म के समय शरीर की सुरक्षा,पोषण एवं विकास की जिम्मेदारी माता-पिता न सँभालें तो उसे अपना अस्तित्व बनाये रखना भी कठिन होगा। हज़ारों वर्षों का संचित ज्ञान, विज्ञान एवं अनुभव उसे कुछ की समय में मुफ्त में ही प्राप्त हो जाता है। लिपि बनाने, भाषा गढ़ने, विज्ञान का आविष्कार करने, अनेकानेक साधनों का निर्माण करने, साहित्य, कला इतिहास, भूगोल, कृषि जैसी अनेकानेक ज्ञान की

विधाओं का नये सिरे से मनुष्य को अकेले अनुसंधान करना पड़े तो उसे एक जीवन तो क्या हज़ारों जीवन समूची उपलब्धियों को समझने के लिए खपाने होंगे। पर यह सौभाग्य ही कहना चाहिए कि पूर्वजों का संचित ज्ञान और उन ज्ञान की धाराओं की व्याख्या और विवेचना करने वाले मनीषियों का सहयोग उसे अनायास ही प्राप्त है। इस सहयोग को पाकर कितने ही व्यक्ति भौतिक क्षेत्र में योग्य, प्रतिभाशाली, विद्वान बनते देखे जाते हैं।

कहा तो जाता है कि मनुष्य सर्वसमर्थ है, सब कुछ करने में समर्थ है तथा अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ के सहारे बहुत कुछ कर सकता है लेकिन कब? केवल तभी जब तक उसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सामाजिक सहकार मिलता रहे। मौलिक क्षमता (बेसिक qualifications), प्रतिभा का अपना महत्व तो है, लेकिन प्रतिभाएं भी तभी उभर पाती हैं जब उपयुक्त परिस्थितियां मिल पाती हैं। हमारे इर्द-गिर्द अनेकों उदाहरण मिल जायेंगें जहाँ suitable chance और conditions न मिल पाने के कारण प्रतिभाएं धरी की धरी रह जाती हैं। अकेले तो

अकेले तो पुस्तकीय ज्ञान (bookish knowledge) भी पर्याप्त नहीं होता, न ही वह मनुष्य के व्यावहारिक जीवन (Practical life) का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। मात्र पुस्तकों के अध्ययन से कोई डॉक्टर, इंजीनियर वैज्ञानिक नहीं बन सकता। ऐसा सम्भव रहा होता तो हर व्यक्ति बाज़ार में उपलब्ध सम्बद्ध विषयों की पुस्तकों को खरीदकर, उनके अध्ययन द्वारा अभीष्ट विषय में दक्षता और प्रवीणता प्राप्त कर लेता। पुस्तकें सर्वसुलभ होते हुए मात्र उनके अध्ययन के बलबूते कोई विशेषज्ञ कहाँ बन पाता है ? आशय यह है कि पुस्तकों के साथ-साथ अध्यापक का मार्गदर्शन, शिक्षण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है। विशेष प्रकार का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने-कला, साहित्य, विज्ञान आदि क्षेत्रों में विशेषता हासिल करने के लिए अपने-अपने ढंग के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन की आशा होती है।

साधना क्षेत्र में भी यहीं सिद्धान्त लागू होता है। भौतिक क्षेत्र की तुलना में आध्यात्मिक क्षेत्र कहीं अधिक अविज्ञात (unknown) है और उतना ही रहस्यमय भी। भौतिक जगत एवं सम्बन्धित वस्तुएँ

तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती हैं, पर अध्यात्म का क्षेत्र तो पूर्णतया परोक्ष (Invisible) है। प्रत्यक्ष की तुलना परोक्ष में भटकाव की अधिक गुंजाइश रहती है। इस भटकाव की सम्भावना इसलिए भी अधिक रहती है कि साधना में आन्तरिक पुरुषार्थ करना पड़ता है। सर्वप्रथम स्वयं पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव का विश्लेषण कर लेना सबसे अधिक कठिन कार्य है और उससे भी कठिन है उन गुणों में त्रुटिओं का निवारण एवं विकास के लिए साधन-उपचार ढूँढ़ लेना। इसीलिए तो हमने "स्वयं को जानने" वाली लेख शृंखला अभी-अभी लिखी है। उंगली पर गिने जाने वाले विरले ही होते हैं, जो अकेले अपने बलबूते, स्वयं का निरीक्षण, परीक्षण कर लेने एवं आवश्यक सुधार आदि के उपक्रम में सफल हो जाते हैं। ऐसी exceptions भी अवश्य मिल सकती हैं जो साधना क्षेत्र में अपने अकेले पुरुषार्थ के सहारे बढ़ चलने और मंजिल तक पहुँच जाने में सफल होते हैं। उनकी सफलताओं में भी जन्म-जन्मान्तरों की साधना के संचित संस्कार एवं अनुभव ही सूक्ष्म रूप से प्रेरणा देते एवं मार्गदर्शन की भूमिका निभाते हैं,

लेकिन exception तो exception ही हैं, इन exceptions के चक्र में पड़ कर अगर साधारण लोग नकल करने लगें तो शायद कुछ और ही परिणाम निकलें। इन exceptions का अन्धानुकरण करने से तो असफलता ही हाथ लगती और साधना क्षेत्र में भटकाव ही पल्ले पड़ता है।

साधना क्षेत्र में प्रचण्ड पुरुषार्थी बुद्ध कभी-कभी प्रकट होते हैं, जो बिना किसी की सहायता के ही आत्मज्योति को जला लेने में सफल हो जाते हैं। लगन एवं भक्ति भावना के धनी रामकृष्ण परमहंस जैसे स्तर के साधक का अवतरण कभी-कभी होता है, जिनका अन्तः प्रकाश स्वतः उनकी साधना का मार्गदर्शन करता है। आत्म-तत्व का, अपने एकाकी पुरुषार्थ द्वारा साक्षात्कार कर लेने वाले संकल्प के धनी रामतीर्थ, रामदास तो कभी-कभी ही प्रकट होते हैं, अन्यथा साधना के रहस्यमय एवं अविज्ञात क्षेत्र में प्रविष्ट करने वाले अधिकाँश साधकों को प्रत्यक्ष मार्गदर्शन एवं संरक्षण अभीष्ट होता है।

यों तो साधना के विधि-विधानों, क्रियाओं एवं उनकी परिणतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन धर्मग्रन्थों, योग- शास्त्रों में मिलता है पर मात्र उन्हें पढ़कर साधना आरम्भ कर देना संकट से खाली नहीं है। शास्त्रों धर्मग्रन्थों की उपयोगिता उतनी ही है जितनी कि विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्र के लिए सम्बंधित पुस्तकों की। सर्वविदित है कि केवल पुस्तकें ही किसी भी क्षेत्र का मार्गदर्शन करने में सक्षम नहीं हो सकतीं, तो फिर साधना जैसे विस्तृत क्षेत्र का मार्गदर्शन अकेले शास्त्र कैसे कर सकते हैं ? यह एक अटल सत्य है कि मार्गदर्शन का गुरुतर दायित्व समर्थगुरु ही सँभाल सकता है।

गुरु की महिमा का गुणगान शास्त्रकारों, मनीषियों, धर्मग्रंथों सभी ने एक स्वर में किया है। गुरु की महता का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों ने उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे मूर्धन्य देवताओं से भी बढ़कर परब्रह्म के रूप में अभिनन्दित किया है। सद्गुरु की प्राप्ति के संदर्भ में एक सन्त का कहना है :

सह तनु विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिखे जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

कबीरदास जी कहते हैं: गुरु गोविन्द दोऊ खड़ें, काके लागूँ पायँ। बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय।

सद्‌गुरु की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं। मनीषियों ने निरन्तर यही कहा है कि आत्मिक प्रगति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। इसके बिना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।शास्त्रकारों ने जिस गुरुतत्व की वन्दना की है वह गुरु वस्तुतः मानवी अन्तःकरण है। निरन्तर सद् शिक्षण और उर्ध्वगमन का प्रकाश दे सकना इसी केन्द्र के लिए सम्भव हैं। अपने अंतःकरण को निरन्तर कुचलते रहने, उसकी पुकार को अनसुनी करते रहने से आत्मा की आवाज मन्द पड़ जाती है। आत्मा का अवज्ञा करते रहने वालों को ही दुर्बुद्धिग्रस्त और दुष्कर्म लिप्त पाया जाता है, अन्यथा संजीव आत्मा की प्रेरणा सामान्य स्थिति में इतनी प्रखर होती है कि कुमार्ग का अनुसरण कर सकना मनुष्य के लिए सम्भव ही नहीं

होता। यह आत्मिक प्रखरता ही वस्तुतः वह तात्विक गुप्त मन्त्र है जिसकी महिमा का गुणगान करते शास्त्र नहीं थकते ।

शास्त्रकारों ने सद्‌गुरु का वन्दन करते हुए उसे परम आनंद दायक परब्रह्म कहा है। यह अन्तःकरण रूपी सद्‌गुरु का ही रूप है। गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर मानने की मान्यता अन्तरात्मा को परमात्मा का उपलब्धि आधार समझने के लिए ही प्रतिष्ठापित की गई है। निरन्तर परामर्श और अहर्निश साथ दे सकना अन्ततः सद्‌गुरु द्वारा ही सम्भव है । उसी की प्रखरता, नियन्त्रण और अंकुश साधक को भटकावों से बचाता है। अवाँछनीयताओं का डटकर मुकाबला कर सकना प्रखर अन्तरात्मा द्वारा ही संभव है।

लेकिन इस अन्तःकरण रूपी सद्‌गुरु की भूमिका बाद में आरम्भ होती है। आमतौर पर हमारा अंतःकरण मैल और गंदगी से ढका रहता है जिस कारण साधक को प्रेरणा एवं प्रकाश नहीं मिल पाता है। यहीं पर आवश्यकता पड़ती है शरीरधारी गुरु को धारण करने की। गुरु की कृपा अनुकंपा से ही अन्तःकरण का प्रकाश आलोकित

होता है तथा आन्तरिक सद्गुरु (हमारा अंतःकरण) भी अपनी भूमिका सम्पादित कर सकने में समर्थ बनता है। एक बार फिर से कहते हैं कि विरले ही होंगें जो अकेले ही अपने बलबूते पर साधना का काँटों भरा मार्ग पार करने और मंजिल तक जा पहुँचने में समर्थ हुए हैं, अधिकाँश को प्रत्यक्ष समर्थ शरीरधारी गुरु की ही सहायता, कृपा से लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता मिली है ।